

विशेष अतिथि रचनाकार



श्री सूर्यभानु गुप्त

देश : दो गज़लें

-एक-

पूछो न यूँ कटा है हर सुबहो-शाम जंगल!
जंगल के दुश्मनों का अब भी गुलाम जंगल!
सपनों के नाम सदमे, आँखों के नाम जंगल,
हमने शहादतों का पाया इनाम जंगल!
कटते ही ढूँढ़ लेता फौरन मुकाम जंगल,
हर आदमी के अंदर करता कयाम जंगल!
आपस में पेड़ लड़ते, सौ तरह से झगड़ते,
अपनी ही आग पहने, रह-रह के आम जंगल!
नफरत, जुनून, वहशत, दंगे-फसाद, दहशत,
यूँ अपनी कुर्सियों के लेता है दाम जंगल!
मज़हब, ज़मीन, भाषा, इक मुस्तकिल तमाशा,
अब खेल कुर्सियों का हर एक गाम जंगल!
हर उजली आस्तीं पे मिलते लहू के छींटे,
करता है बस्तियों में चुपचाप काम जंगल!
इस दौर की सियासत धोखों की इक रिवायत,
किससे करें शिकायत, बहरों के नाम जंगल!

✍ **सूर्यभानु गुप्त**, 2, मानकू मेंशन, सदानंद मोहन जाधव मार्ग, दादर (पूर्व), मुंबई - 400 014.

जिस मोड़ पर पहुँचकर भटके कुतुबनुमा भी,
उस मोड़ पर तो साहब, है सबसे श्याम जंगल!
भरती है डोम के घर सच्चाई अब भी पानी,
झूठों के हाथ आया इक इतिज़ाम जंगल!
वादे, जुलूस, नारे, फिर-फिर वही नज़ारे,
जागीर है ठगों की कब से तमाम जंगल!
कम्प्यूटरों के बाहर आँधे पड़े हुए हैं,
अपनी शिनाख्त, गैरत, रोटी, अवाम, जंगल!
हर तन-बदन पुकारे, कोई ना धूप उतारे,
सूखा हर एक बादल, प्यासा तमाम जंगल!
पहली दफा तो संग में सीता भी थीं, लखन भी,
अब के ना कोई होगा, निकले जो राम जंगल!
आम आदमी की खातिर, दिल्ली है दूर अब भी,
बरसों से है वतन में, जंगल की शाम, जंगल!
अपने वतन के मिट्टी-पानी का मैं तो शायर,
मेरी ज़ुबान दरिया, मेरा कलाम जंगल!

-दो-

देश जैसी है शामो-सहर ज़िंदगी!
बन गई मिर्जा ग़ालिब का घर ज़िंदगी!
इक गुलामी से हम दूसरी में फँसे,
धोखा खाई हुई हर नज़र ज़िंदगी!
रोटी, कपड़ा, मकां आज भी ख़्वाब है,
आज भी आँसुओं में है तर ज़िंदगी!
सब्ज़बागों की बस्ती में मुहत्त से है,
एक महरूमियों का सफ़र ज़िंदगी!
धूप, वादे, वफा, रोशनी, देवता,
हर खिलौने से उतरा कलर ज़िंदगी!
सारे अल्फाज़ सोने के निकले हिरन,
ख़्वाब, जन्नत, वतन, राहबर, ज़िंदगी!
हाथ को हाथ यारों सुझाई न दे,
चंद जेबों में सिमटी सहर ज़िंदगी!
अपना ही घर है मैदान अब जंग का,
अपने ही खून में तर-ब-तर ज़िंदगी!
उम्र भर झोंपड़ों को दिखाती रही,
रोज़ कश्मीर के पोस्टर ज़िंदगी!
दस जगह से रफू की गई शर्ट है,
क्या करें ले के कोई बशर ज़िंदगी!
सालहासाल से है मेरे मुल्क में,
एक उड़ती हुई-सी ख़बर ज़िंदगी!
बंधु! कहियो हमारी भी जयराम जी,
तुमको भूले से मिल जाए गर ज़िंदगी!

सूर्यभानु गुप्त

“सिर्फ शायर वही हुए जिनकी, ज़िंदगी से नहीं पटी साहब!”

ये बात जिसने कही है उनकी, उम्र यूँ ही नहीं कटी साहब!

हर विधा की शायरी ऐसी, लिखी जिन्होंने उम्र भर साहब!

जनाब सूर्यभानु जी हैं बने, आज हमारे हमसफ़र साहब!

40 सालों से जो करते रहे, साहित्य सृजन अनवरत साहब!

‘रेल दर्पण’ की खास महफिल में, ऐसे दिग्गज का है स्वागत साहब!

✍ **प्रधान सम्पादक**

वैचारिक आमंत्रण

आपके भीतर छिपा हुआ है एक अनूठा रचनाकार, उसे उजागर करने का सपना हम करते हैं साकार,
आप हमें भेजिये विचार, हम देंगे आपको आकार, रेल दर्पण है, वैचारिक संगम का सार्थक आधार!

‘रेल दर्पण’ का अगला अंक जुलाई, 2011 में प्रकाशित होगा। इस अंक में प्रकाशनार्थ अपनी मौलिक रचनाएँ आप मौलिकता के प्रमाणपत्र सहित सुवाच्य स्वरूप में हमें 15 अप्रैल, 2011 तक या इससे पहले अग्रांकित पते पर डाक के ज़रिये भेज सकते हैं, या फिर इसी अवधि में हमारे ई-मेल पते editor.raildarpan@gmail.com पर हिंदी रचनाएँ PDF फॉर्मेट में तथा अंग्रेजी रचनाएँ Word Document में मेल कर सकते हैं। डाक के ज़रिये रचनाओं के प्रेषण के लिए हमारा पता है:-

प्रधान सम्पादक

‘रेल दर्पण’ पत्रिका,
मुख्य जनसम्पर्क कार्यालय, पश्चिम रेलवे,
तीसरी मंज़िल, स्टेशन भवन, चर्चगेट, मुंबई - 400 020.
www.wr.indianrailways.gov.in